चारु चन्द्रलेख जनशक्ति-संगठन की अद्भुत रचना

प्रो. इशरत खान

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को आधुनिक हिन्दी का निर्माता कहा जा सकता है। वे हिन्दी साहित्य के एक ऐसे आलोक स्तम्भ हैं जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से, हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं को आलोकित किया। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में एक साथ एक संवेदनशील कवि, एक श्रेष्ठ निबंधकार, एक समर्थ आलोचक, एक सफल उपन्यासकार एवं संपादक, एक गंभीर शोधकर्ता तथा छात्रवत्सल आचार्य की छवियों का दर्शन होता है।

इसके अतिरिक्त वे एक सूक्ष्म निरीक्षण शक्तिसंपन्न साहित्येतिहास लेखक और साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान भी हैं।

चारू चन्द्रलेख उपन्यास 1963 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें बारहवीं शताब्दी के उत्तर भारत की राजनैतिक एवं सामाजिक अव्यवस्था की गाथा कही गयी है।

उपन्यास की मुख्य कथा राजा सातवाहन एवं रानी चन्द्रलेखा के इर्द-गिर्द ही घूमती है। राजा सातवाहन के जीवन में चन्द्रलेखा का प्रवेश एक नाटकीय ढंग से होता है। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में रानी चन्द्रलेखा ने राजा को जनकल्याण एवं भारत की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये, विदेशियों के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित किया। प्रेरणा देकर रानी स्वंय कोटिभेदी रससिद्धि - प्राप्ति की वाममार्गी साधना मे लीन हो जाती हैं और राजा इधर-उधर मारा-मारा भटकता हुआ अपने अन्य सहायकों के द्वारा जन-संगठन का कार्य करने का प्रयत्न करता है। राजा को इस कार्य में सबसे बडी बाधा वाममार्गी साधकों की है। समाज में इन सिद्धियों, रुढियों, आडम्बरों का इतना आतंक है कि जनता ही नहीं राजा भी बाहुबल का आश्रय छोडकर

इन सिद्दियों पर विश्वास करने लगते है। उपन्यास की समाप्ति मैना (मौजसिंह) की मृत्यु से होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी जी ने 12 वीं शताब्दी की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण बडी ईमानदारी के साथ किया है। देश के उत्तरी भाग पर तुर्कों का शासन स्थापित हो चुका था। दक्षिण में गोपाद्रि दुर्ग तक वे पहुँच गये थे और भी आगे बढकर पैर जमाने की कोशिश में थे. शाकम्भरी का चाव्हाण नरेश कान्यकुब्ज का जयित्रचंद अपना पूर्ण वैभव खो चुके थे। आर्यावर्त की राजनीतिक स्थिति को दर्शाता राजा का कथन इस प्रकार है... ''सम्पूर्ण आर्यावर्त मेरी आँखों के सामने ध्वस्त हो रहा है। यहां के मंदिर और मठ, वृद्ध और बालक, ब्राह्मण और श्रमण अनाथ, पंगु और भयत्रस्त हैं। किसी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। एक-एक करके क्षत्रिय राज्य विदेशियों के प्रचण्ड प्रहार से जर्जर और भूलुंठित होते जा रहे हैं।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दृष्टि से खण्ड-खण्ड, अखण्ड-भारत का एक खणड तो विदेशियों के द्वारा अधिकृत कर ही लिया गया था। शेष भारत के नरेश मिथ्याकुलाभिमान और पारस्परिक द्वेष के कारण इन मुट्ठी भर संगठित विदेशियों पर विजय प्राप्त करने में अक्षम थे। किसी भी राजा के पास यथेष्ट सेना नहीं थी। स्वयं राजा सातवाहन के पास गिने चुने लगभग एक हजार ही सैनिक थे। स्थाई सैनिकों के अभाव में योगियों और साधुओं की सेना तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा था। राजाओं के राजकोश खाली होने के कारण सैनिक उनका साथ छोड रहे थे। राजा और प्रजा दोनों का मनोबल गिरा हुआ था। जब एक राज्य पर विदेशी आक्रमण करते थे तो दूसरे देशी राजा उनका साथ देना तो दूर, विदेशियों का ही साथ देना पसन्द करते थे। जयित्रचंद की पत्नी सूहवदेवी के सहयोग से ही मुहम्मद गौरी आसानी से काशी, कान्यकुब्ज के राज्य को अपने कब्जे में ला सका। इस प्रकार सम्पूर्ण आर्यावर्त में राष्ट्रीयत्व, संगठन एवं एकता का अभाव था।

प्रजा तंत्र-मंत्र, जादू-टोने, सिद्धियों-ऋद्धियों पर विश्वास करने के लिये विवश थी किंतु ये सिद्ध, आक्रमणों से अपनी रक्षा करने में स्वयं असमर्थ थे। तपस्वी मिसिलपाद, सिद्दों के मिथ्याभाशी, ढोंगी और चमत्कारी रूप का पर्दाफाश करते हुए अमोधवज्र से कहते हैं... 'आज मैं समूचे मगध में एक मनुष्य ऐसा नहीं देख रहा हूँ जो हमारी सहायता कर सके। साधारण प्रजा हमें सिद्ध समझती रही हैं। आज आतताई के खड्गाघात से सिद्दियों का यह सारा खिलवाड टूटकर गिर गया हैं... आज भी हमारे विहार के ढोंगी साधक मन्त्र बल से तुर्की की सेना उडा देने की गप्पों पर विश्वास करते हैं।''

विषम राजनीतिक स्थिति का वर्णन करने से ही संतुष्ट नहीं होता वरन उन कारणों का भी निर्देश करता है जो इस राजनीतिक पतन के मूल में थे। इस उपन्यास में आर्यावर्त के विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त होने का प्रमुख कारण सामान्य जनता की राजनीतिक उदासीनता, जातिभेद तथा वर्गभेद आदि बताए गये है। यह एक विश्वसनीय एवं स्वीकृत ऐतिहासिक तथ्य हैं। द्विवेदी जी ने इस ऐतिहासिक परिदृश्य का अकंन मार्मिक प्रसगों और संवेदनशील भाषा द्वारा किया है।

यहीं प्रश्न उठता है कि इस से दो-चार होने का उपाय क्या है? द्विवेदी जी ने इतिहास के अनुभव से ही वह

उपाय प्रस्तुत किया है। वे जानते थे कि जन-जागृति के बिना कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। वे यह भी जानते थे कि राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चिष्ट बने रहने का परिणाम निश्चित पराभव है। इस तथ्य को उपन्यास में जन-शक्ति के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने कोटि-कोटि जनता का मनोबल ऊँचा करके, उसकी शक्ति और सामर्थ्य को उत्तेजित करके विदेशी आततायियों और आक्रान्ताओं के विरुद्ध संगठित होकर, बाहुबल से लडने का आह्वान किया है। योगियों की सिद्धियों का विरोध करते हुए उन्हें एकजुट होकर अत्याचार का सामना करने के लिये प्रेरित करते हुए गोरक्षनाथ कहते हैं।

''इतना स्मरण रखें कि आपकी साधना अकेले की साधना नहीं हो सकती। समस्त जगत के दुख-सुख हास्य-रोदन आपको प्रभावित करेंगे। इसलिये आप जलते हुए शस्य क्षेत्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते, टूटते हुए मन्दिरों से आँख नहीं मूंद सकते, ललकते हुए शिशुओं और घिघयाते हुए वृक्षों की ओर से कान नहीं बंद कर सकते । आप संगठित होकर ही अत्याचार का विरोध कर सकते हैं।

जब तुर्क सेना भारत पर आक्रमण करती है तब विद्याधर भट्ट, जनशक्ति के बल पर ही तुर्कों पर विजय प्राप्त करते है। इस सन्दर्भ में विद्याधर जनशक्ति की प्रशंसा करते हुए राजा सातवाहन से कहते है...

''तुमने जिन किसानों और साधारण प्रजावर्ग के लोगों को मेरी सहायता के लिये भेजा था उनके करतब देखकर में चकित हूँ... भैंस चराने वाले खेतिहारों ने, भीख मांगने वाले निठल्लों ने परान्नपुष्ट रॅडमुंड साधुओं ने, नाचगान से जीवन यापन करने वाली नर्तकियों ने, रस्सी पर खेल दिखाने वाले नटों और नटनियों ने अद्‌भुत देशभक्ति का परिचय दिया है।'' मैना की ग्रामीण सेना तुर्कों तथा उनके सहायक घुंडको की सेना से युद्ध मे जो करतब दिखाती है, वह जनशक्ति का ही प्रतीक है यही जनशक्ति का एक रूप हमें 1857 में दिखाई देता हैं। इसमें भी किसानों, वेश्याओं और आम जनता ने अहम भूमिका निभाई थी।

इसी के साथ प्रस्तुत उपन्यास में रचनाकार ने अतीत ही नहीं, प्रत्युत एक शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन किया है कि प्रजा उसी राजा का साथ देती है जो प्रजा के सुख-दुख का ध्यान रखता है।

उपन्यास में देश का नेतृत्व करने वाले कर्णधारों के कर्तव्यबोध को राजा सातवाहन के माध्यम से दर्शाया है। राजा सोचता है कि...'' मुझे ऐसा लगता है कि श्रद्धा चर्चित अनुगामिता ही राजा का यथार्थ आदर्श है... राजा उस समय वही कहा जायेगा जो लोकसेवक होगा। सेवा भावना ही कदाचित उत्तम नेतृत्व का रूप ग्रहण करती हैं।''

''चारू चन्द्रलेख' का प्रणयन भारत पर चीन आक्रमण के आसपास हुआ। अतः प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस पर उसका प्रभाव देखा जा सकता हैं. क्या 62-63 के मध्य देश के नेताओं, कर्णधारों में आत्मविश्वास की कमी आ गई थी या उनमें विचार मतैक्य का अभाव था या अपने उस भारतदेश की स्वतंत्रता को बचाने

में वे असमर्थ थे जिसे हमारे देश के महापुरूषों ने अपना बलिदान देकर हमें सौंपा था।

इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि देश की स्वतंत्रता और स्वाभिमान की रक्षा तंत्र-मंत्र और सिद्धियों से नहीं प्रत्युत आत्म-बलिदान से की जा सकती हैं। मात्र सोचना और समझना निर्वीर्य और निठल्ले लोगों का कार्य है। स्वतंत्रता और राष्टरक्षा के लिये प्राणों की आहुति देने से भी हिचकिचाना नहीं चाहिये। हमारा यह शरीर समाप्त हो सकता हैं किन्तु इसका लाभ आने वाली पिढियों को अवश्य मिलेगा। इस तरह हमारी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

सीदीमौला को फटकारता हुआ, विद्याधर तथा महाराज सातवाहन को युद्ध के लिये प्रेरित करता हुआ मैनसिंह (मैना) कहता है..... 'इन बकवादी निठल्ले सिब्दों के चक्कर में मत पडो। ये बिगाडना जानते हैं, सवांरना नहीं जानते है।...''

ये क्या जानते हैं कि देश की रक्षा का अर्थ है बलिदान।

महाराज मेरा धैर्य समाप्त हो गया है। उठो आँधी की तरह बहो, बिजली की तरह कडको, मेघ की तरह बरसो। हमें अपनी पसलियों को जलाकर प्रकाशशिखा जला देना है। जलने दो जलने दो इस प्रदीप्त शिखा को। गृहस्थ का बलिदान एक पीढी के लिये नहीं होता। आने वाली पिढियाँ प्रकाश पा जाएँ। इतना बहुत है।''

उपन्यास में यह तथ्य उजागर होता है कि मातृभूमि की रक्षा करना किसी जाति विशेष अथवा राजा का ही पेशा नहीं है इस दुस्तर कार्य को जनसहयोग के बिना पूर्ण नहीं किया जा सकता। मातृभूमि की रक्षा करना समस्त प्रजा का जन्मसिद्ध अधिकार एवं धर्म है।

सैनिकों एवं प्रजा को सम्बोधित करते हुए रानी चन्द्रलेखा कहती है... मैं तुम्हारी आँखों के सामने देखते-देखते सारा देश हत्त दर्प, छिन्न-विछिन्न, और पराजित दिखाई दे रहा है।.. प्रजा समझती है कि लडाई करना राजा और राजपुत्रों का धर्म है शेष प्रजा निश्वेष्ट बैठी रहती है। लडाई जिनका धर्म माना जाता है वे जब हार जाते है तो प्रजा भी हार मान लेती है।... युद्ध में सफलता तभी मिल सकती है, जब समूची प्रजा में आत्मगौरव और प्रतिरोध की भावना उत्पन्न हों।

जनशक्ति में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इस दृष्टि से भी यह उपन्यास महत्वपूर्ण बन जाता है। चारू चन्द्रलेख उपन्यास में चन्द्रलेखा, मैना और नाटीमाता इन तीनों नारियों का जीवन दुखों से परिपूर्ण है लेकिन इसके बावजूद तीनों में अद्‌भुत चेतना एवं साहस है, उपन्यास की मैना चेतना-सम्पन्न पात्र है वह परम सुन्दरी है इसीलिये, पुरुष प्रधान समाज में अपने बचाव के लिये वह पुरूष वेश में रहती है - मैनसिंह छद्‌म नाम से। उसमें राष्ट्रप्रेम कूट-कूट कर भरा है अपने देश के लिये त्याग और बलिदान को ही वह सबकुछ मानती है। मध्यगुयीन युद्ध के वातावरण में वह राजा सहित सभी पुरुषों को युद्ध के लिये प्रेरित करती है ऐसा लगता है कि उसका जीवन अपने लिये नहीं बल्कि देश की रक्षा के लिये है - इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं।...

'घुण्डकेश्वर' के साथ युद्ध करते हुए मैन सिंह का साहस देखते ही बनता है - विकट युद्ध हुआ। मैन सिंह की फुर्ती और युद्ध कौशल देखने ही लायक था। वाह ! कैसा अद्‌भुत साहस है, कैसी फुर्ती है।''

मैना वीरों को प्रेरित करती हुई उनके कर्तव्यबोध को जगाती हुई कहती है - ''अल्हड वीरों को कितनी देर तक विश्राम करना चाहिए।' इसके साथ ही मैना राजा को उनके कर्तव्यबोध का स्मरण कराती हुई कहती है... क्षमा करें महाराज ऐसे नहीं चलेगा। वे लोग हमारे ऊपर आक्रमण करते रहें और हम बचाव करते रहे, यह ठीक नहीं है। मुझसे अब यह नहीं सहा जाता।... मै चाहती हूँ कि आप इन उद्‌बुद्ध अनुचरों को लेकर सीधे दिल्ली पर टूट पडें। साहस में सिद्धि बसती है महाराज।...''

उठो महाराज प्रचण्ड आँधी की भाँति बहो। मैना ने क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुफकार कर कहा ''कायरों और कमीनों को शरण देने वाले गढ पर धक्का मारो।''

इसी प्रकार का अदम्य साहस एवं जीजिविषा रानी चन्द्रलेखा में भी है। क्षीण अवन्तिका नरेश, सातवाहन को वह देश-रक्षा एवं चक्रवर्ती राजा बनने के लिये प्रोत्साहित करती हुई कहती है... 'किन्तु रानी चन्द्रलेखा तुम्हें आश्वासन देती है कि तुम्हें निराश नहीं होना पडेगा। मैं तुम्हारे पीछे प्रजावर्ग को संगठित करने के लिये प्रयत्न करने जा रही हूँ। वीरों के सच्चे धर्म के लिये लडो। हार और जीत इतिहास विधाता के इंगित के अनुसार होती है। मनुष्य की सार्थकता और सफलता प्रयत्न करने में है। इसी प्रोत्साहन से राजा युद्ध करते है और विजय प्राप्त करते है...'' रानी की योजना चरितार्थ हुई। समस्त मालव जनपद में एक अद्‌भुत नव-जीवन जाग उठा। शत्रु को लौट जाना पडा।

गोपाल राय चन्दलेखा रानी और मैना की तुलना करते हुए लिखते है ''तत्कालीन भारतीय समाज नाना प्रकार की रुढियों, अंधविश्वासों, तर्कशून्य मान्यताओं आदि से ग्रस्त होकर क्षीणशक्ति हो रहा था। मन्त्र-तन्त्र, ग्रह-नक्षत्र और अनेक प्रकार की सिद्धियों में लोगों का विश्वास इतना बढ गया था कि कर्म और पौरूष की महिमा ही लुप्त हो चली थी झूठे विश्वासों और पाखंड का इतना बोलबाला था कि 'चारू चन्द्रलेख' की नायिका रानी चन्द्रलेखा जैसी प्रबुद्ध नारी भी सिद्धियों के मायाजाल में भटक जाती है। इसके विपरीत मैना सिद्धों ओर योगियों को देखते ही भडक उठती है।''

स्वतंत्रता के पश्चात भी हम कुछ पुराने राजाओं और कुछ नए सामंतों के हाथों में देश की बागडोर सौंपकर निश्चिन्त हो गये है बीच-बीच में देवपुत्रों की कृपा का फल भी जनता चखती रही है इसका परिणाम 1962-63 और आज भी हम देख ही रहे है।

प्रजातन्त्र (?) की आज जो स्थिति है वह इन नए राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों के भरोसे बदलने वाली नहीं है। वह बदलेगी तो विराट जन-जागृति से ही।

चारू चन्द्रलेख टूटते - बिखरते मध्यकालीन समाज की मानसिक टूटन का और शेष शक्तियों को संयमित

कर सम्पूर्ण बल के साथ विरोधों के सामने डटने के संकल्प का महाकाव्यात्मक निरुपण है। सातवाहन के रूप में युद्धरत भारतीय शक्ति आगे चलकर अपनी अन्तःप्रेरणाओं को को खोकर गरिमाच्युत होती है लेकिन आचार्य जी ने इस अतीत, इस इतिहास का निरपेक्ष चित्रण नहीं किया है बल्कि उसके माध्यम से वह उद्‌बोधनात्मक ऊर्जा प्रवाहित की है, जो किसी जाति के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है 'चारू चन्द्रलेख' उपन्यास के एक - एक पृष्ठ से आह्वान का स्वर भी गुंजित होता है जो सैंकडों वर्षो के बाद भी भारतवासियों की नसों में नए रक्त का संचार करता रहेगा। सदैव सजग एवं जाग्रत करता रहेगा।

●●●

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली : प्र. - 315, भाग - 1
2. वही : प्र. - 376
3. वही : प्र. - 358
4. वही : प्र. - 445-446
5. वही : प्र. - 333
6. वही : प्र. - 421
7. वही : प्र. 435
8. वही : प्र. 437
9. वही : प्र. - 334
10. वही : प्र. - 335
11. प्रो. गोपाल राय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : प्र. 283